P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पं0 दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन में धर्म सम्बन्धी अवधारणा

धीरज सिंह
विभागाध्यक्ष,
शिक्षा विभाग,
मॉडर्न कालेज ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज,
मोहननगर, गाजियाबाद,
उ0 प्र0, भारत

सारांश

भारतीय राजनीति में पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसा नाम हैं जिन्होंने मूल्य खो रही राजनीति में मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हुए उसकी शुचिता बरकरार रखी। राष्ट्रसेवा के व्रत को पूर्ण करने के लिये उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया। उनके समस्त बौद्धिक विचारों का संकलन एकात्म मानव दर्शन के नाम से जाना जाता है।

उनके विचार प्राचीन धर्म एवं संस्कृति के पोषक थे। वे धर्म की उसी उदार, विस्तृत, व्यापक व विराट अवधारणा के पोषक थे जहां भारतीय धर्म विश्व धर्म का स्वरूप था और समस्त मानवता के लिए समर्पित था। उनके धर्म की अवधारणा में संकुचित व संकीर्ण विचारधारा का कही कोई स्थान नही था। उनके धर्म की परिधि में सम्पूर्ण विश्व एवं उसकी समस्त मानवता समाहित थी। उनका मानना था कि धर्म एक बहुत व्यापक आवधारणा है जो समाज को बनाये रखने के लिए जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है। धर्म समाज में सामंजस्य, सहयोग, कर्तव्य पालन और लोक कल्याण का कारक है। यह सार्वभौमिक, शाश्वत और धारणीय है। रिलीजन धर्म का पर्याय नहीं बल्कि किसी मत या पंथ का बोधक है। धर्म एक अति व्यापक अवधारणा है जो समाज का आधार है।

मुख्य शब्द : पं0 दीनदयाल उपाध्याय, धर्म, रिलीजन, व्यापक आवधारणा, सार्वभौमिक, लोक कल्याण।

प्रस्तावना

भारत की गणना विश्व के उन महानमत देशों में की जाती है जो अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के बल पर सदैव प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पर विराजमान रहा है। उसकी इस महान सभ्यता एवं संस्कृति को समय–समय पर महापुरूषों ने अवतरित होकर वैभवशाली समृद्ध व सम्पन्न किया तथा यहां की महान परम्परा को अनवरत प्रबुद्ध करते हुए प्रवाहमान बनाये रखा। इन महान विभूतियों द्वारा स्थापित महान परम्पराओं ने समाज एवं राष्ट्र का सदैव ही पथ प्रदर्शन किया। महापुरूषों के अवतरण की परम्परा राष्ट्र में सदैव विद्यमान रही है। वर्तमान मे भी राष्ट्र की ये धारा सतत्, प्रवाहमान है। राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधार तिलक, महर्षि अरविन्दो, महात्मा गांधी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, जय प्रकाश नारायण आदि इसके उदाहरण है। पं0 दीन दयाल उपाध्याय भी एक ऐसा ही महान नाम है महात्मा गांधी, जय प्रकाश नारायण एवं लोहिया जी की कोटि में आता है, जिसने भारतीय परम्परा, राजनीति एवं चिन्तन जगत को समृद्ध किया। भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे हस्ताक्षर के रूप में याद किये जाते हैं जिन्होंने मूल्य खो रही राजनीति में मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हुए उसकी शुचिता बरकरार रखी। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र सेवा हेतु समर्पित कर दिया और राष्ट्रसेवा के व्रत को पूर्ण करने के लिये अपने समस्त व्यक्तिगत इच्छाओं व सुखों का परित्याग कर दिया।

पं0 दीन दयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितम्बर 1916 को मथुरा जिले के नगला चन्द्रभान ग्राम में पं0 भगवती प्रसाद जी के यहां हुआ था। वे अति कुशाग्र बुद्धि के मेधावी छात्र रहे। जीवन में अनेक विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए राष्ट्र सेवा के व्रत से वे कभी विचलित नही हुए और इसी व्रत का उद्देश्य लेकर वे 1942 ई0 में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के पूर्णकालिक सदस्य बने। 1951 ई0 में जनसंघ की श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा स्थापना की गई और उनके आग्रह पर तत्कालीन सरसंघ संचालक श्री गुरू गोलवलकर जी ने पं0 दीनदयाल जी को मुखर्जी जी के सहयोग हेतु भेजा। यहीं से पं0 उपाध्याय की राजनीतिक यात्रा प्रारम्भ होती हे। भारतीय राजनीति में वे एक प्रखर वक्ता, कुशल संगठनकर्ता, अर्थवेत्ता, विचारक, दार्शनिक जननेता,

राजनीतिज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। तमाम राजनैतिक व्यस्तताओं के बावजूद उनका अध्ययन से नाता नहीं टूटा। भारतीय एवं पाश्चात्य ग्रंथों का अध्ययन एवं स्वयं के मौलिक चिन्तन द्वारा अपने विचार प्रस्तुत किये। अपने इस मौलिक चिन्तन जिसमें आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं राजकीय सिद्धांतों का संकलन था, देश के समक्ष 'एकात्म मानवतावाद' दर्शन के नाम से रखा।

'एकात्म मानव' दर्शन उसके प्रबुद्ध विचारों का संकलन है जो मानवीय जीवन के समस्त पक्षों राष्ट्र, समाज, प्रकृति अर्थात व्यष्टि व समष्टि से सम्बन्धित है।

एकात्म मानव दर्शन के माध्यम से पं0 उपाध्याय ने व्यक्ति, समाज व राष्ट्र ही नही वरन् समस्त विश्व के लिए एक कल्याणकारी सर्वहितकारी, सामजस्यपूर्ण, अनुकरणीय वैचारिक आधार प्रदान किया जिसका अनुपालन कर प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है एवं विश्व शांति की ओर कदम बढ़ाया जा सकता है। एकात्म मानवदर्शन का प्रतिपादन उस समय हुआ जब देश धर्म के आधार पर विभाजित हुआ था और समाज में धार्मिक आधार पर खांई चौड़ी हो रही थी। पं0 उपाध्याय ने उस परिस्थिति में धर्म की एक अति व्यापक अवधारणा प्रस्तुत की थी जो प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर आधारित थी एवं विश्व कल्याण व शांति का मार्ग प्रशस्त करने वाली थी।

प्रस्तुत आलेख में पं0 दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत की गयी धर्म की आवधारणा व उसके वास्तविक अर्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

शोध–आलेख का शीर्षक

प्रस्तुत आलेख का शीर्षक है– *"पं.दीनदयाल उपाध्याय के चिन्तन में धर्म सम्बन्धी अवधारणा"।*

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य पंडित दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत की गई धर्म के अवधारणा का अध्ययन करना है।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय की धर्म सम्बंधी अवधारणा

पं0 दीन दयाल मां भारती के ऐसे सपूत थे जिनकी भारतीय धर्म एवं संस्कृति में अपार आस्था थी। उनके विचार प्राचीन धर्म एवं संस्कृति के पोषक थे। वे धर्म की उसी उदार, विस्तृत, व्यापक व विराट अवधारणा के पोषक थे जहां भारतीय धर्म विश्व धर्म का स्वरूप था और समस्त मानवता के लिए समर्पित था। उनके धर्म की अवधारणा में संकुचित व संकीर्ण विचारधारा का कही कोई स्थान नही था। उनके धर्म की परिधि में सम्पूर्ण विश्व एवं उसकी समस्त मानवता समाहित थी। उनका माना था कि धर्म एक बहुत व्यापक आवधारणा है जो समाज को बनाये रखने के लिए जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है। पं0 उपाध्याय की धर्म सम्बंधी अवधारणा को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

धर्म का अर्थ है धारण करना

पं0 उपाध्याय धर्म की उस अवधारणा को स्वीकार करते है जिसमें *''धारयते इति धर्मः''* कहा गया है। वे धर्म को धारण करने योग्य समस्त मानवीय गुणों के रूप में स्वीकार करते है। उनके ही शब्दों में *''धारणा से धर्म है। यानि जिस चीज के कारण, जिस शक्ति के कारण, जिस भाव के कारण, जिन नियमों के कारण, जिस व्यवस्था के कारण कोई चीज टीके वह धर्म है।''*[1] व्यक्ति अपने सद्गुणों के आधार पर टिकता है, सद्गुण ही उसकी शक्ति है और सद्गुणों के पालन से ही व्यवस्था निर्मित होती है जो समाज व राष्ट्र के आधार का कार्य करती है। व्यक्ति हो, समाज हो या राष्ट्र या विश्व ही इनकी धारणा से ही इनका अस्तित्व है। एक आदर्श समाज के लिए यह आवश्यक है कि सभी अपने कर्तव्यों को समझे, उनको धारण करें, उनका कुशलतापूर्वक निर्वहन करे। यदि किसी समाज में सभी अपने कर्तव्यों को भली प्रकार समझते है और उनका निर्वहन करते है तो इनका अभिप्राय यह है कि उस समाज में धर्म है। *''वे कहते है – धर्म वही है जो सबके लिए लाभकारी होता है और जो मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करता है। 'धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः' यह हमारे यहां धर्म की व्याख्या है। अर्थात जिन बातों, शक्तियों, भावनाओं, व्यवस्थाओं तथा नियमों के कारण समाज की धारणा होती है, वही धर्म है।''*[2]

पंडित जी का मानना था शरीर की धारणा के लिए भी भिन्न अवस्थाओं में भिन्न–भिन्न धर्म है। शरीर का धर्म काल एवं परिस्थिति के अनुसार निर्धारित होते है। *''कैसे समय कैसा व्यवहार करना चाहिए इनका विचार करना पड़ता है। धर्म यानी शरीर की धारणा और शरीर की धारणा के नियम हैं जो बदलते चले जायेगें। समय के अनुसार बदलेगें स्थिति के अनुसार बदलेगें।*[3]

धर्म का कार्य

समाजस्य, कर्तव्य पालन व लोक कल्याण –पं0 दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि धर्म कभी विरोध नही उत्पन्न करता। धर्म तो व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि का आपस में व्यक्ति का व्यक्ति से व समाज से, प्रकृति से एवं सभी का परस्पर सम्पूर्ण विश्व में मेल स्थापित करता है। उनके ही शब्दों में –*''वास्तव में यह सामंजस्य बैठाने का काम भी धर्म ही करता है, जिसके कारण भाई–भाई के बीच झगड़ा नही होता, एक भाई का दूसरे भाई से प्रेम करना भी सीखता है।''*[4] पति–पत्नी, पिता–पुत्र, परिवार के सदस्य आपस में, व्यक्ति अपने समाज में जिस प्रकार प्रेम पूर्वक एक दूसरे को चाहते हुए मिलकर सामंजस्य पूर्ण ढंग से कार्य करते है वह सब धर्म है। इसी प्रकार *''व्यक्ति और राष्ट्र के बीच में जिससे मेल बैठ सके वह राष्ट्र और अब व्यक्ति के बीच का धर्म है।''*[5] वास्तविकता तो यह है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों की सही ढंग से पहचान कर उनका उचित ढंग से पालन करे तो कही संघर्ष व विरोध उत्पन्न ही न हो और धर्म का यही वास्तविक कार्य है जैसा कि महाभारत में कहा भी गया है –

''धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्म कुधर्मकः।
अतिरोधात तु यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रम।।''

पं0 उपाध्याय ने धर्म के इसी आशय को स्वीकार किया और इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की। धर्म का कार्य प्रकृति के साथ भी सामंजस्य स्थापित करते हुए आगे बढ़ना है। यदि प्रकृति तथा धर्म का सामंजस्य सटीक नही है तो वहां सभ्यता व संस्कृति गतिमान वह प्रगतिशील नही हो सकती। *''जब*

प्रकृति धर्म के सिद्धांतो के अनुसार चलेगी तब तक हमारे पास संस्कृति एवं सभ्यता रहेगी। इस संस्कृति से हमे मानव जीवन में उत्कृष्टता मिलती रहेगी। यहां धर्म का अनुवाद नियम के रूप में किया गया है।'[6] किसी भी राष्ट्र का विकास प्रकृति व धर्म का तादात्म्यता और सामंजस्य पर निर्भर करता है।

धर्म शाश्वत है, सार्वभौमिक है और एक है

प0 दीन दयाल का मानना था कि धर्म किसी विशेष पूजा पद्धति या स्थान विशेष या चर्च, मन्दिर, मस्जिद आदि पर जाना मात्र नही हैं। ये सब तो धर्म के संकेत या अंग है। ये अनेक मतों को बताते हैं। *''धर्म एक है, धर्म वही है जो सबके लिए लाभकर हो, मोक्ष का मार्ग उसके द्वारा प्रशस्त्र होता है। धर्म की जो साधारण व्याख्या की गयी है व्याख्या है, धारणात् धर्ममाहुः।'*[7] वास्तव में देखा जाय तो विश्व में धर्म मात्र एक है वह धर्म शाश्वत है और सार्वभौमिक है। सभी मतों या पंथो में जिनकी स्वीकृति हुई है। पं0 उपाध्याय ने एक स्थान पर कहा था – *'' धर्म के मौलिक सिद्धान्त शाश्वत और सार्वभौमिक है। हालांकि उनका कार्यान्वयन समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार भिन्न हो सकता है।'*[8] कहने का अभिप्राय है कि विश्व में मत या पंथ तो अनेक है परन्तु धर्म मात्र एक है। धर्म सभी के लिए एक ही है। गुणों की धारणा सभी के लिए आवश्यक है और ये गुण भी सार्वभौमिक हैं तो धर्म भी सार्वभौमिक हुआ।

'रिलीजन' धर्म का पयार्य नही

बहुधा लोग अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द को धर्म का पर्याय मान लेते हैं। किन्तु रिलीजन शब्द धर्म का अर्थ अभिव्यक्त करने के लिए पर्याय नही है। रिलीजन एक संकीर्ण शब्द है। *''अंग्रेजी शब्द 'रिलीजन' ने धर्म सम्बन्धी शुद्ध अर्थ को खराब करने में बहुत सहायता की है। अंग्रेज जब भारत में आये तो उन्होनें भारत में धर्म शब्द सुना। धर्म जैसा व्यापक शब्द उनके पास नही था। उन्होंने धर्म का अनुवाद कर दिया ' रिलीजन'। ..... हिन्दु धर्म एक व्यापक शब्द है जिसमें कई रिलीजन सम्मिलित होते है। रिलीजन को हमारे यहां उपासना पद्धति कहा गया है।'*[9] भारत में अनके पंथ या मत प्रचलित है। हिन्दु धर्म के भीतर अनके मत या पंथ या रिलीजन है। बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव, लिंगायत, सिक्ख आदि अनके मत है। इसी प्रकार विश्व में अनेक मत या पंथ की पूजा पद्धति प्रचलित है। ये रिलीजन का बोध कराते हैं धर्म का नही। धर्म तो अति व्यापक अवधारणा है। धर्म की परिधि में सम्पूर्ण मानवता, सम्पूर्ण प्रकृति व सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है। धर्म किसी व्यक्ति विशेष, जाति विशेष या स्थान विशेष का नहीं वरन् सम्पूर्ण मानवता के लिए होता है। इसी लिए उन्होंने एक अन्य स्थान पर भारतीय सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया कि–*''धर्म के लिए अंग्रेजी शब्द रिलीजन यहा ठीक नही है।''* [10] रिलीजन तो सीमित अर्थो में प्रयुक्त होता है जबकि धर्म की परिधि में सम्पूर्ण मानवता व उसका निरंतर विकास समाहित है। *''सहयोग, सहिष्णुता तथा शांति के अतिरिक्त मानवीय गुणों से परिपूर्ण मानवता ही अंततोगत्वा मानव मात्र की प्रसन्नता और निरतंर विकास के लिए आवश्यक है।'*[11] सच्चे अर्थों में धर्म इन्ही मानवता मूलक गुणों का समुच्चय है जिन पर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व का विकास निर्भर करता है।

धर्म जीवन व संस्कृति का अंग तथा समाज का आधार

भारतीय जीवन पद्धति संस्कार प्रधान है। यहां जीवन को व्यवस्थित व सुचारू ढंग से संचालित करने के लिए *'पुरूषार्थ चतुष्टय'* की व्यवस्था भारतीय मनीषियों' द्वारा की गई है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरूषार्थ है। *''पुरूषार्थ का अर्थ प्रयास होता है जिससे मनुष्य सही पथ पर चलता है। मनुष्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जन्म से ही पाए जाते हैं।'*[12] भारतीय जीवन पद्धति इन्ही चार पुरुषार्थो पर आधारित है। ये चारों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं एवं परस्पर समन्वित रूप में मानव जीवन की दिशा का निर्धारण करते हैं। भारतीय जीवन शैली में धर्म को प्रमुखता दी गयी है लेकिन किसी पुरूषार्थ की उपेक्षा नही की गई है। पं0 उपाध्याय के ही शब्दों में– *''धर्म प्राथमिक महत्व रखता है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए की अर्थ की अनुपस्थिति में धर्म कार्य नहीं कर सकता है। इसलिए कहा गया है कि –जो मनुष्य भूखा है वह कोई भी पाप कर सकता है।'*[13] भारतीय जीवन पद्धति इस प्रकार रची गयी है कि प्रत्येक मानवीय कृत्य के मूल में हम धर्म को स्थापित पाते है। धर्म भारतीय जीवन का अभिन्न अंग है। जीवन का प्रत्येक कर्म धर्म के आधार पर निर्दिष्ट है। ऐसा इसलिए है क्योंकि *–'धर्म मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति में नियंत्रण में सहायता करती है जिससे वह निर्धारण करने में सफल होता है कि क्या उसके लिए लाभकारी एवं आनन्दमयी है। इसलिए धर्म संस्कृति का अभिन्न अंग कहा गया है।'*[14] चार पुरूषार्थ आपस में समन्वित है किन्तु धर्म को ही भारतीय जीवन पद्धति का अंग बनाया गया। ऐसा क्यों ? इसको पं0 उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुए कहा कि *''धर्म को ही जीवन का अंग बनाया है क्योंकि उसके द्वारा ही हमने शेष सभी को साधते हुए देखा है। ..... अर्थ और काम ही नहीं मोक्ष की भी प्राप्ति धर्म से होती है। इसलिये धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः।'..... ..... भारतीय जीवन को धर्म प्रधान बनाने का प्रमुख कारण यह था कि इसी में जीवन के विकास की सबसे अधिक सम्भावना है।'*[15] धर्म भारत की आत्मा है। यहां प्रत्येक कार्य के मूल में धर्म समाहित है। धर्माधारित जीवन शैली ही भारतीयता की पहचान है। पं0 उपाध्याय ने माना था कि धर्म मानव जीवन का अभिन्न अंग व समाज का आधार है जिसके बिना हमारे समाज का चलना संम्भव नही है। उनके ही शब्दों में *–'' वास्तव में समाज धर्म के आधार पर कार्य करता हे। इस प्रकार काम करने से स्वाभाविक रूप से जो कुछ प्राप्त होता है, वह उन्नति है। .... समाज का आधार धर्म है।'*[16]

निष्कर्ष

पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने धर्म सम्बन्धी जो अवधारणा प्रस्तुत की वह अति उदार, व्यापक व सार्वभौमिक थी। उनकी धर्म सम्बन्धी अवधारणा भारतीय मनीषियों द्वारा स्थापित पालित व पोषित धर्म की उसी प्राचीन परम्परा की पुष्टि थी जो भारत में सनातन काल से चली आ रही थी। उन्होंने धर्म को सभी जनों के कल्याण का माध्यम माना। उनके धर्म की परिधि इतनी

व्यापक थी जिसमें सम्पूर्ण समष्टि समाहित थी। उनकी इस अवधारणा में भेदभाव को कोई स्थान नही था। उन्होनें जगत में व्याप्त एकात्मकता के आधार पर धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने माना कि सम्पूर्ण विश्व में एक ही धर्म है जिन्हें अलग–अलग धर्म के रूप में प्रचलित किया जाता है वस्तुतः वे विभिन्न मत हैं। विश्व में मत तो अनेक हो सकते है किन्तु धर्म एक है।

धर्म का बहुत सुबोध विवेचन करते समय उन्होंने कहा था– *'धर्म संघर्ष में नही, समझदारी में होता है। धर्म की सीख है कि एक का दूसरे से नाता समान स्वार्थ का नहीं, एक ही आत्मा का होता है। महाभारत में धर्म और अधर्म की सरल व्याख्या की गयी है। 'मम' अधर्म है, 'न मम' धर्म है। ' मेरा कुछ नही, सब तेरा है' यह धर्म की भावना होती है और 'सब कुछ मेरा है' यह अधर्म की धारणा है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपने को केन्द्र मानकर सारे समाज का विचार करता है। संसार को सुखी करना हो तो 'न मम' की संकल्पना का विचार करना ही पड़ेगा। व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज का हित दोनों का संकलित तालमेल बिठाना होगा। व्यक्ति स्वातंत्र्य अवश्य होना चाहिए। उस पर कोई बंधन न हो। किन्तु उस स्वतंत्रता का उपयोग मनुष्य केवल अपने लिए करता हो तो वह गलत होगा। व्यक्ति को अपने लिए नही समाज के लिए जीना चाहिए। तभी वह समाज की सेवा कर सकेगा।'*[17]

आज सम्पूर्ण विश्व का जो परिदृश्य है उसको देखते हुए प्रतीत होता है कि यदि पं0 दीनदयाल की धर्म की आवधारणा का अनुपालन किया जाय तो विश्व में कही भी विरोध की स्थिति नही रहेगी, आतंकवाद को स्थान नही मिलेगा और सम्पूर्ण विश्व में समरसता व्याप्त रहेगी। उनकी धर्म सम्बन्धी अवधारणा भारत ही नही वरन सम्पूर्ण विश्व के लिये प्रत्येक काल एवं परिस्थिति में सदैव प्रासंगिक है और सदैव इसकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। आवश्यकता है उस अवधारणा को अपने जीवन शैली का अंग बनाने की। यदि भारत में सच्चे अर्थों में धर्म की स्वीकार्यता हो जैसा कि पं0 उपाध्याय ने माना है तो भारत को विश्व गुरू बनने से कोई नही रोक नही सकेगा और उसका प्राचीन गौरव उसे पुनः प्राप्त हो सकेगा।

अंत टिप्पणी

1. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–123*
2. *मिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–5 राष्ट्र की अवधारणा, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1991 पृष्ठ संख्या–28*
3. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–124*
4. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–125।*
5. *पं0 दीन याल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–125।*
6. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से।*
7. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–123।*
8. *पं0 दीन दयाल के अनमोल विचार, https://www.behtarlife.com*
9. *उपाध्याय, पं 0 दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, सम्पादक– अग्निहोत्री, रामशंकर एवं शुक्ल, भानु प्रताप, लखनऊ, लोक हित प्रकाशन, चौदहवां संस्करण २०१४, पृष्ठ संख्या 79।*
10. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्धारा दिये गये व्याख्यान से।*
11. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्धारा दिये गये व्याख्यान से।*
12. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्धारा दिये गये व्याख्यान से।*
13. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्धारा दिये गये व्याख्यान से।*
14. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्धारा दिये गये व्याख्यान से।*
15. *राष्ट्र जीवन की समृद्ध यार राष्ट्र धर्म, शरद पूर्णिमा, वि0 सं0 एण्ड अंक*
16. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, साध्य संस्थान 2014, पृष्ठ संख्या–121*
17. *केलकर, भालाचन्द्र कृष्ण जी, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–3 सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990, पृष्ठ संख्या –14।*